कहानी

हिंदुस्तान से एक खत

इंतिज़ार हुसेन

अनुवाद - नन्द किशोर विक्रम

अंजींज-अंज-जान (जान से प्यारे) सआदतो-ए-इकबाल के निशान (सौभाग्य व प्रताप के प्रतीक) बरंखुर्दार कामरान, तूल उम्र: (खुदा लम्बी आयु करे) बाद दुआ और तमन्ना-ए-दीदार के स्पष्ट हो कि यह जमाना तुम्हारी ंखैरियत न मालूम होने की वजह से बहुत बेचैनी में गुंजरा। मैंने विभिन्न माध्यमों से ंखैरियत भेजने और खैरियत मंगाने की कोशिश की मगर व्यर्थ। एक चिट्ठी लिखकर इब्राहीम के बेटे युसुफ को भेजी और आग्रह किया कि इसे तुरन्त कराची के पते पर भेजो और उधर से जो चिट्ठी आये मुझे वापसी डाक से रवाना करो। तुम्हें पता होगा कि वह कुवैत में है और अच्छी कमाई कर रहा है। बस इसी में वह अपनी औकात भूल गया और पलटकर लिखा ही नहीं कि चिट्ठी भेजी या नहीं और उधर से जवाब आया या नहीं आया। शेख सिद्दीकी हसन खान का बेटा लन्दन जा रहा था तो उसे भी मैंने एक ंखत लिखकर दिया था कि उसे कराची के लिए लिंफांफे में बन्द करके लन्दन के लैटर बॉक्स में डाल देना। उस हरामंखोर ने भी कुछ पता न दिया कि खत उसने भेजा या नहीं।

सबसे ंज्यादा चिन्ता इमरान मियां की तरफ से रही कि वे वहां पहुँचे या नहीं पहुँचे। पहुँचे तो किसी तौर तो उन्हें अपनी खैरियत का खत भिजवाना था। हाल यह है कि समझ लो कि गुलाबी जाड़ा था। मैं अपना पलंग कमरे से दालान में ले आया था। रात गये दस्तक हुई। मैं परेशान हुआ कि इलाही खैर। इस बे-वक्त कौन आया है और क्यों आया है? जाकर दरवांजा खोला, दस्तक देने वाले को सिर से पैर तक देखा। हैरान-परेशान कि यह कौन आ गया है। खून ने खून को पहचाना वर्ना वहां अब पहचानने के लिए क्या रह गया था।तुम क्या हाल बनाकर आये हो? मगर फिर मैं अपने किये पर आप लज्जित हुआ। यह क्या कम था कि हमारी अमानत हमें वापस मिल गयी। बन्दे को चाहिए कि हर हाल में खुदा का शुक्र करे। शिकायत का शब्द जबान पर न लाये। ऐसा न हो कि वह शिकायत कलमा-ए-कुफ्र (वह बात जिससे धर्म का अनादर हो) बन जाए और कहने वाला पाप के दंड का अधिकारी बने। कमजोर बुनियाद के इनसान ने इस दुनिया में आने के बाद क्या कुछ किया है कि उसके साथ जो भी हो उस पर शिकायत की गुंजाइश नहीं। आदमी बस चुप रहे और खुदा के प्रकोप से डरता रहे।

तुम्हारी चची ने इमरान मियां को देखा तो हक-दक रह गयीं। गले लगाया और बहुत रोयीं। मैं तो चुप रहा था मगर वे पूछ बैठीं कि बहू कहां है? बच्चों को कहां छोड़ा? इस पर उस अंजींज की हालत खराब हो गयी। मैं और तुम्हारी चची दोनों घबरा गये। फिर सावधानी बरती कि ऐसा कोई प्रसंग बीच में न आये।

इमरान मियां यहां तीन दिन रहे मगर क्या रहे। न बोलना न हंसना। बस गुमसुम। तीसरे दिन इमरान मियां को खयाल आया कि मियां जानी की कब्र पर चला जाए। मैंने सिर पर हाथ फेरा और कहा बेटे तुम पच्चीस बरस बाद दादा की कब्र पर 'फातिहा' (मुर्दे की आत्मा को शान्ति पहुंचाने के लिए दुआ) पढ़ोगे। मगर दिन में इस तरह जाना ठीक नहीं। तुम इस मिट्टी में पैदा हुए हो, पहचाने जाओगे। इस पर वह अंजींज खिसियानी हंसी हंसा और बोला, चचा जान मैं घर आने से पहले बस्ती में घूम-फिर लिया हूं। इस मिट्टी ने मुझे नहीं पहचाना। मैंने कहा, बेटा अब इसी में खैरियत है कि यह मिट्टी तुम्हें न पहचाने। खैर, तो मैं शाम पड़े इमरान मियां को कब्रिस्तान ले गया। नई कब्रों से मैंने परिचित कराया। पुरानी कब्रों को उन्होंने खुद पहचान लिया। अंधेरा था इसलिए कुछ कब्रों को पहचानने में कुछ दिक्कत पेश आयी। मियां जानी की कब्र अब बहुत पुरानी हो चुकी है। सिरहाने खड़ा हुआ हरसिंगार का पेड़ गिर चुका है। तुम्हें याद होगा कि मियां जानी को हरसिंगार का बहुत शौक था। उन्होंने बाग में बहुत शौक से कई पेड़ लगाए थे और उनसे इतने फूल उतरते थे कि साल भर तक बच्चियों के दुपट्टे उनमें रंगे जाते थे और हर दावत पर बिरयानी में डाले जाते थे, फिर भी बच रहते थे। मगर हरसिंगार ध्यान चाहता है। मैं अकेला किस-किस चींज पर ध्यान दूं! हरसिंगार का यह आंखिरी पेड़ था जो मियां जानी के सिरहाने खड़ा रह गया था। जंग से पहले वाली बरसात में वह भी गिर गयी। अब हमारा बांग और हमारा कब्रिस्तान दोनों हरसिंगार से खाली हैं। रहे नाम अल्लाह का। बांग बचा रह गया यही बहुत है। कब्रिस्तान से मिला होने की वजह से कब्रिस्तान में शुमार हुआ और हाथ से जाते-जाते बच गया। मगर इन सत्ताईस बरसों में इतने पेड़ गिरे हैं और उनके साथ इतनी यादें दंफन हो गयी हैं कि अब इस बाग को भी कब्रिस्तान ही समझना चाहिए। जो पेड़ बाकी रह गये हैं वे गुजरे दिनों के कत्बे (शिलालेख) नंजर आते हैं। खैर, बांग का जो हाल है वह इमरान मियां देख गये हैं। अगर पहुंच गये होंगे तो बताया होगा। यहां से तो वह उसी सुबह को चले गये थे। रात भर मियां जानी की कब्र के सिरहाने बैठकर गुजार दी। मैं भी बैठा रहा। जब झुटपुटा हुआ और चिड़ियां बोलीं तो वह अंजींज झुरझुरी लेकर उठा और मुझसे रुंखसत चाही। मैंने हैरानी से पूछा, क्यों जा रहे हो? आ गये हो तो रहो। फीकेपन से बोला कि यहां तो मुझे कोई पहचानता ही नहीं। मैंने कहा कि अंजींज अब न पहचाने जाने ही में खैरियत है मगर वह मेरी बात से कायल न हुआ। संफर उस पर सवार था। मैंने पूछा, मगर बेटे जाओगे कहां? बोला जहां कदम ले जाएंगे। मैंने उसकी बातों से अन्दाज लगाया कि काठमांडू जाकर वहां से कराची जाने की सूरत निकालते की नीयत है। दिल तो बहुत दुखा मगर कुछ उसका आग्रह और कुछ मेरा यह डर कि कहीं यह खबर न निकल जाए। अत: मैंने सब्र किया। अपने बाजू से दुआ-ए-नूर खोलकर उसके बाजू पर बांधी और अल्लाह की हिंफांजत में उसे रुंखसत किया। चलते-चलते ताकीद की थी कि सीमा से निकलते ही जिस तरह भी हो खैरियत की सूचना देना। मगर वह दिन है और आज का दिन खैरियत की खबर न मिली।

उधर की खबर इधर कम पहुँचती है और पहुँचती भी है तो इस तरह की उस पर विश्वास करने को जी नहीं चाहता। एक रोज शेख़ सिद्दीकी हसन ने आकर सूचना सुनायी कि पाकिस्तान में सब सोशलिस्ट हो गये हैं। और प्याज पाँच रुपये सेर बिक रहा है। यह खबर सुनकर दिल बैठ गया। मगर, फिर मैंने सोचा कि शेख साहब पुराने काँग्रेसी हैं पाकिस्तान के बारे में जो खबर सुनाएंगे उस पर ऐतबार न करना चाहिए। चन्द दिनों बाद ही एक ऐसी ंखबर सुन ली जिससे बुरी अंफवाहों को खंडन हो गया। खबर सुनी कि मिर्जाइओं को गैर-मुस्लिम करार दिया गया है। शेख साहब को मैंने यह खबर सुनायी तो अपना-सा मुंह लेकर रह गये। अल्लाह तआला पाकिस्तान पर अपनी रहमत करे और इस कौम को उसकी नेकी का फल दे। हम तो कुफ्रिस्तान में हैं। गैर-इस्लामी रस्में और तौर-तरंके

रखते हैं और बोल नहीं सकते। करीब ही गैर मुकल्लिदों (वे मुसलमान जो इस्लाम धर्म के चारों इमामों में से किसी के अनुयायी नहीं) ने अपनी मस्जिद बना ली है वहां वे ऊँची आवांज में 'आमीन' कहते हैं और हम चुप रहते है।

हा/, शेख सिद्दीकी हसन तुम्हारे बारे में एक मर्तबा खबर लाए। खबर सुनायी कि तुमने कोठी बनवायी है। बैठक में सोफे बिछे हुए हैं और टेलीविजन रखा है। यह सुनकर खुशी हुई। खुदा का शुक्र अदा किया कि यहां की क्षतिपूर्ति वहां हो गयी है। यहां हवेली का हाल अच्छा नहीं है। पिछली बरसात में झुकी हुई कड़ियां और झुक गयीं। दीवानंखाने का हाल यह है कि छत की तरफ देखो तो आसमान नंजर आता है। हमारी बेकारी और कंर्जे के बोझ का हाल तुम्हें अच्छी तरह मालूम है, तुम कुछ रकम भेज सको तो मियां जानी की कब्र की मरम्मत करा दी जाए और दीवानंखाने की छत पर मिट्टी डलवा दी जाए। इससे ज्यादा अभी करना भी नहीं चाहिए। हवेली के मुकद्दमे का अभी तक फैसला नहीं हुआ। किबला भाई साहब मरहूम 1947 में चलते वक्त मुकद्दमे के कांगंजात मेरे सुपुर्द कर गये थे। खुदा का शुक्र है कि उस वक्त से लेकर अब तक मैंने सब पेशियां कामयाबी से भुगतायी हैं और लायक वकीलों से परामर्श किया है। खुदा की जात से उम्मीद है कि मुकद्दमे का फैसला जल्दी होगा और हमारे हक में होगा। मगर मृत्यु-दूत का पता नहीं कि किस रोज सिर पर आ खड़ा हो। कभी-कभी बहुत चिन्तित होता हूं कि मेरे बाद यह मुकद्दमा कौन लड़ेगा।

जिस तरफ नंजर डालता हूं अंधेरा ही अंधेरा नंजर आता है। हमारे साहबंजादे के लच्छन ये हैं कि अपना नाम प्रेमी रख लिया है और रेडियो पर जाकर ड्रामों में काम करता है। छोटे भैया मरहूम की साहबंजादी ने हिन्दू से शादी कर ली है। अब वह खुले मुंह रहती है और साड़ी बांधती है और माथे पर बिन्दी लगाती है। पाकिस्तान में जो खानदान का नक्शा है वह तुम पर मुझसे ज्यादा रोशन होना चाहिए। सुना है कि आपा जानी की लड़की नर्गिस ने अपनी मर्जी से शादी की है और जिससे की है वह वहाबी है। खुद आपा जानी का हाल मैंने यह सुना है कि खुले मुंह बेटे की मोटर में बैठती हैं और बजाजों से बिना पर्दा बात करके कपड़ा खरीदती हैं।

यह सब कुछ देखने के लिए मैं ही जिन्दा रह गया हूं। किबला भाई साहब और छोटे भैया दोनो अच्छे दिनों में सिधार गये। जब में कब्रिस्तान जाता हूं और मियां जाती और छोटे भैया की ंकब्रों पर फातिहा पढ़ता हूं तो किबला भाई साहब बहुत याद आते हैं। क्या वंक्त आया है कि अब हममें से कोई जाकर उनकी कब्र पर फातिहा भी नहीं पढ़ सकता। जो खानदान एक जगह जिया, एक जगह मरा अब उसकी कब्र तीन कब्रिस्तानों में बंटी हुई हैं। मैंने किबला भाई साहब से बड़े अदब से अर्ज किया था कि अगर आप हमें छोड़ ही रहे हैं तो मुनासिब यह है कि आप कामरान मियां के पास कराची जाइए। मगर छोटे बेटे की मुहब्बत उन्हें ढाका ले गयी। उनकी बे-वंक्त मौत हम सबके लिए बहुत बड़ा सदमा थी। मगर अब मैं सोचता हूं कि उनके उठ जाने में भी अल्लाह तआला ने कुछ भलाई सोची होगी। वे नेक आत्मा थे। कुदरत को यह मंजूर न था कि वे भय और पीड़ा के दिन देखने के लिए जिन्दा रहें। यह दिन तो मुझ पापी को देखने थे।

अब जबकि बड़ों का साया सिर से उठ चुका है और हमारा खानदान हिन्दुस्तान और पाकिस्तान और बांग्लादेश में बंटकर बिखर चुका है और मैं कब्र के किनारे बैठा हूं, मैं सोचता हूं कि मेरे पास जो अमानत है उसे तुम तम पहुंचा दूं कि अब तुम ही इस खानदान के बड़े हो। मगर अब अमानत हाफिजे के माध्यम से ही स्थानान्तरित की जा सकती है। ंखानदान की यादगारें वंशावली समेत ढाका ले गये थे। जहा/ खानदान के सदस्य नष्ट हुए वहीं वे यादगारें भी नष्ट हो गयीं। इमरान मियां यहां बिलकुल खाली हाथ आये थे। सबसे बड़ी घटना यह हुई कि हमारी वंशावली गुम

हो गयी। हमारे पूर्वज कि सादात अजाम में से थे। इतिहास ने बहुत से कष्ट और तकलींफें देखी हैं मगर वंशावली के गुम होने का दुख हमें सहना था। अब हम मुसीबत का मारा खानदान हैं जो अपनी वंशावली गुम कर चुका है और अस्त-व्यस्तता का शिकार है। कोई हिन्दुस्तान में खेत हुआ, कोई बांग्लादेश में गुम हुआ और कोई पाकिस्तान में मारा-मारा फिरता है। आस्था में खलल पड़ चुका है। गैर इस्लामी तौर-तरींके अपना लिये हैं, दूसरे धर्म और सम्प्रदायों में शादियाँ कर रहे हैं। यही हाल रहा तो थोड़ी मुद्दत में हमारे खानदान की असल नस्ल बिलकुल ही नष्ट हो जाएगी और कोई यह बताने वाला भी नहीं रहेगा कि हम कौन हैं और क्या हैं।

बेटे सुन कि हम मां-बाप दोनों की तरफ से सैयद हैं। हजरत इमाम रजी कांजिम से हमारी वंशावली मिलती है। मगर खुदा का शुक्र है कि हम राफिंजी (हंजरत अली के वे अनुयायी जिन्होंने जमल की लड़ाई में उनका साथ छोड़ दिया) सही आस्था रखने वाले हनफी मुसलमान (वे सुन्नी मुसलमान जो इमाम अबूहनीफा के अनुयायी हैं। सच्चे मुसलमान) हैं। अहले-बेत (हंजरत मुहम्मद के परिवार के सदस्य) से मुहब्बत रखते हैं। मियां जानी का तरीका चला आता था कि आशूर (मुहर्रम की दस तारीख, हंजरत इमाम हुसैन की शहादत का दिन) के दिन रोजा रखते और दिन भर मुसल्ले (नमाज पढ़ने की चटाई या दरी) पर बैठे रहते। हमारे घर में एक तसबीह थी कि आशूर के दिन शाम की नमाज के समय सुर्ख हो जाए करती थी। मियां जानी बताते थे कि ये खास उस मिट्टी के दाने हैं जहां हमारे वंश प्रवर्तक सैय्यद हंजरत इमाम हुसैन घोड़े से फर्श-ए-जमीन पर आये थे। इस तसबीह के सुर्ख होने के साथ वालिद मर्हूम की तन्मयता बढ़ जाए करती थी। मियां जानी बताते थे मगर छाती पीटने और रुदन से परहेज करते थे कि यह अनुचित रस्म है। हां खिचड़े की देगें पकती थीं जो गरीबों और दीन दुखियों में बांटी जाती थीं। बंटवारे के बाद बस एक देग रह गयी थी। पिछले बरस हम उस एक देग से भी गये। कबूली का देगचा पकवाया और गरीबों में बांट दिया, अगले बरस का हाल अल्लाह मियां को मालूम है। महंगाई बढ़ती जा रही है और हमारा हाल खस्ता होता जा रहा है। बेटे हमें यह तो मालूम है कि पाकिस्तान में प्याज किस भाव बिक रही है। मगर एक बात सुन लो कीमतें चढ़कर गिरा नहीं करतीं और अंख्लाक गिरकर संभला नहीं करते अत: पनाह मांगो उस वक्त से जब चींजों की कीमतें चढ़ने लगें और अख्लाक गिरने लगें। जब ऐसा वक्त आ जाए तो बन्दों को चाहिए पापों की क्षमा मांगें और तौबा करें और कलाम-ए-पाक की तलावत (पठन) करें कि आद और समूह की बस्तियों के जिक्र में समझ-बूझ रखनेवालों के लिए बहुत-सी निशानियां हैं।

खैर, मैं जिक्र अपने खानदान का कर रहा था जिसे मैंने इकट्ठा भी देखा मगर बिखरते हुए ज्यादा देखा। हम तीनों भाइयों को अपने हुजूर में बिठाकर मियां जानी ने बयान किया कि खुदा उनकी कब्र को हरसिंगार की सुगन्ध से सजाए रखे। वे फर्माते थे कि मेरे वालिद बुजुर्गवार सैयद हातिम अली ने उस वक्त, जब उनका यात्रा-समय करीब आया, फर्माया जनाब ने, कि मुझसे बयान किया मेरे बाप सैयद रुस्तम अली ने उस तजकरे के प्रसंग से कि जिसमें हमारे खानदानी हालात दर्ज हैं और जो नष्ट हो गया है। उस समय जब उन्होंने सन सत्तावन में बाईस ख्वाजा की चौखट को छोड़ा और बरस-बरस परेशान हाल जगह-जगह फिरे। और प्रसंग से उन बुंजुर्गों के बयान करता हूं मैं तुमसे कि हम असल में अस्फिहान कि मिट्टी हैं। जब शहंशाह हुमायूं ने अपने राज्य की प्राप्ति के लिए इस शहर में अपनी फौज तैयार की तो हमारे मूल पुरुष मीर मंसूर मुहद्दिस जो खजूर विक्रेता थे और हदीस (हंजरत मुहम्मद साहब के कथन) की विद्या के असीम सागर थे। अस्फिहान निस्फ जहान से उस वंक्त जनाब के हमरकाब (साथ) हुए और जुलमत कदा (अंधेरा मकान) हिन्द में दांखिल हुए, ईमान के प्रकाश-स्तम्भ बने। अकबरबाद में उनका मजार आज भी सबके आकर्षण का केन्द्र है। ंकब्र कच्ची है। कंवारियां मिट्टी उठाकर मांग में डालती हैं और वह मांग का सिन्दूर बन जाती है। खाली गोद ब्याहियां मिट्टी आंचल में बांधकर ले जाती हैं और

बरस बाद हरी गोद के साथ वापस आती हैं और चादर चढ़ाती हैं। शाहजहां के वक्त में इस बुजुर्ग की औलाद ने यात्रा का सामान बांधा और जहानाबाद पहुंची फिर सन सत्तावन की हलचल में वहां से निकली, हमारे दादा मीर रुस्तम अली ने अपनी दौलत में से दमड़ी साथ न ली बस वंशावली को पटके के साथ कमर पर मजबूत बांधा, कागजों और दस्तावेंजों का पुलिन्दा बगल में दबाया और निकल खड़े हुए। इसी पुलन्दे में खानदान का तजकरा भी था। राह में बटमारों से मुकाबला हुआ, इस अफरातफरी में पुलन्दा बिखर गया कुछ कागज गिर गये। कुछ रह गये। गिर जाने वाले कांगजों में तजकरा भी थी। मगर शुक्र, सौ-सौ शुक्र वंशावली का हर्फ भी मैला न हुआ।

बहुत खाक छानने के बाद इस बस्ती से कि जहां तुम्हारा चचा खाकनशीन है, गुजर हुआ। यहां की ंजमीन को मेहरबान पाकर डेरा किया। जानना चाहिए कि जब जमीन मेहरबान होती है तो महबूबा की गोद की तरह नरम और मां की गोद की तरह खुली हो जाती है। जब ना-मेहरबान होती है तो अत्याचारी पदाधिकारी की भांति सख्त औरर् ईष्यालु के दिल की तरह तंग हो जाती है। सच यह है कि इस जमीन ने एक मुद्दत तक हम पर दया की। उसने हमारे बढ़ते-फैलते ंखानदान को बरस-बरस तक इस प्रकार अपनी गोद में समेटे रखा जैसे मां अपने बच्चे की सीने से लगाए रखती है और किसी को आंखों से ओझल नहीं होने देती। बंटवारे से पहले इस खानदान के सिर्फ तीन व्यक्ति बाहर निकले थे। भाई अशरफ अली, भैया फारुक और प्यारे भाई अशरफ अली हमारे चच्चा जानी के बेटे थे और उम्र में किबला भाई साहब से एक साल बड़े थे। इस ऐतबार से तुम्हारे ताया हुए। खुदा की मेहरबानी से डिप्टी कलक्टर थे और बाहर के जिलों में नियुक्त रहते थे मगर डाली यहीं पहुँचती थी। भैया फारुक उनके छोटे भाई थे और मेरे हम-उम्र थे। जंगलात के विभाग में थे। उम्र सी.पी. में गुजरी। हमारी हवेली में लकड़ी का जितना सामान है वह उन्हीं का बनवाया हुआ था। दोनों भाई परिवार का गर्व थे। उम्र बाहर गुंजारी मगर अन्त में आराम अपनी मिट्टी में आकर किया।

प्यारे मियां फूफी अम्मा के लाड़ले बेटे थे। लाड़-प्यार में ऐसे बिगड़े कि सातों ऐब करने लगे। हमारे ंखानदान में वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने बाईस्कोप देखा। एक बार मैं भी उनके कहे में आकर बहक गया। माधुरी को देखकर दिल बेकाबू हो गया मगर मैंने अपने आप को सभांला और फिर उस तरफ का रुख न किया। प्यारे मियां पहले नाटक के मतवाले थे, बाईस्कोप शहर में आया तो उसके रसिया बन गये।

'बम्बई की बिल्ली' देखकर सुलोचना पर मर मिटे। एक रोज फूफी अम्मा की सीने की बालियां चुराकर घर से निकल गये और सीधे बम्बई पहुँचे। मियां जानी ने कहला भेजा साहबजादे अब इधर का रुख न करना। बम्बई में एक नटनी ने उन्हें झांसा दिया कि तुम्हें सुलोचना से मिलाऊंगी। सुलोचना से तो न मिलाया खुद गले पड़ गयी। सारी जवानी बम्बई में गुजारी। फूफी अम्मा के मरने की खबर पहुंची तो आये। बुढ़ापा आ चुका था। लम्बी सफेद दाढ़ी, हाथ में तसबीह। मां को बहुत रोये। हम सबने कहा अब तुम यहीं रहो। बोले कि मियां जानी की इजांजत के बंगैर यहां कैसे टिक सकता हूं। मियां जानी पहले ही सिधार चुके थे। इजाजत कौन देता। फिर बम्बई चले गये। 1947 ई. लग चुका था और गाड़ियों में हादसे हो रहे थे, सबने समझाया, न माने। गाड़ी में सवार हो गये मगर बम्बई तो पहुँचे नहीं। जाने रास्ते में उन पर क्या गुंजरी।

प्यारे मियां हमारे खानदान की तरफ से 47 के दंगों में पहली भेंट थे। मैंने आंकडे ऌकट्ठे किये हैं तब से अब तक हमारे खानदान के इकत्तीस व्यक्ति अल्लाह को प्यारे हुए। इक्कीस कत्ल हुए, नौ कुदरती मौत मरे, सात को हिन्दुओ ने शहीद कर डाला। चौदह पाकिस्तान जाकर मुसलमान भाइयों के हाथों अल्लाह के प्यारे हुए। इन चौदह

में से एक को कराची में अय्यूब खान के आदमियों ने इलैक्शन के अवसर पर मोहतरमा फातिमा जनाह की हिमायत करने के कारण गोली मार दी। बाकी दस व्यक्ति पूर्वी पाकिस्तान में हलाक हुए। इन व्यक्तियों में मैंने इमरान मियां का शुमार नहीं किया है। बन्दे को अल्लाह की रहमत से मायूस नहीं होना चाहिए। मेरा दिल कहता है कि वह हमारे जिगर का टुकड़ा अगर अभी तक कराची नहीं पहुंचा है तो काठमांडू में है। काठमांडू से याद आया कि भैया फारुक का लड़का शरांफत भी यहां से गुजरा था। वह ढाका से बच निकला था और काठमांडू जा रहा था कि यहां रुक गया। वह बना-बनाया प्यारे मियां है। इस दुर्घटना ने उस पर जरा भी असर किया हो। जितने दिन यहां रहा है, बे-धड़क बाईस्कोप देखता रहा। चलने के लिए तैयार हुआ तो काठमांडू की बजाय बम्बई के लिए बिस्तर बांधा। मैंने बम्बई जाने का कारण पूछा तो कहा कि वहां राजेश खन्ना से मिलूंगा। मैंने कहा कि अबे बेईमान राजेश खन्ना कौन-सा इबिलमोरिया डी बिलमोरिया है जो उससे मिलने के लिए व्याकुल है मगर उसने मेरी एक कान सुनी और दूसरे कान उड़ायी और बम्बई रवाना हो गया। बाद में उसका लंका से ंखरियत का ंखत आया। पता नहीं कि किन रास्तों पर भटकर वह वहां पहुंचा।

शरांफत को जिन्दा देखकर खुदा का शुक्र अदा किया मगर उसके लच्छन देखकर दिल खुश नहीं हुआ। वैसे मैंने जो कुछ सुना है उससे यह प्रकट होता है कि पाकिस्तान जाकर हमारे खानदान की लड़कियां ज्यादा आंजाद हो गयी हैं। मैं तो जिस लड़की के बारे में सुनता हूं यही कि उसने अपनी मर्जी से शादी कर ली है। हमारे खानदान में तकसीम से पहले एक घटना ऐसी हुई थी जो खानदान को बदनाम कर सकती थी मगर उसे भी बड़े अच्छे ढंग से दबा लिया गया। छोटी फूफी की छत पर एक रोज कनकव्वा आके गिरा। तुम जानो कि जिस घर में लड़की जवान हो रही हो उस घर की अंगनाई में रोड़े का गिरना और छत पर कनकव्वे का झुकाव खाना अच्छा लक्षण नहीं हैं। उन दिनों छोटी फूफी की बड़ी लड़की खदीजा कद निकाल रही थी। फूफी ने इस घटना का जिक्र मियां जानी से आकर किया। कनकव्वे के साथ जो पत्र छत पर आकर गिरा था, वह भी सामने रख दिया। मियां जानी आग-बबूला हो गये। बहुत गरजे-बरसे कि रंजा अली के बेटे की यह मजाल कि हमारी छत पर कनकव्वा गिरता है। मगर जब छोटी फूफी ने ऊंच-नीच समझाई तो नीचे पड़े। अब इसके सिवा चारा ही क्या था कि उस दुराचारी के साथ दो बोल पढ़ाए जाएं और लड़की को रुखसत कर दिया जाए। रंजा अली तो सपने में भी नहीं सोच सकते थे कि इस घर की बेटी उनकी बहू बनेगी। तुरन्त निकाह पर राजी हो गये मगर ऐन वक्त पर सवाल उठाया कि सीगा (शिया समुदाय के पाणिग्रहण स्वीकार करने का तरीका) पढ़ाया जाएगा। मियां जानी खून का-सा घूँट पीकर रह गये, मगर क्या करते हां कर दी। मगर उसका नतीजा क्या हुआ। यही कि खदीजा की औलाद आधी तीतर आधी बटेर है। एक ग्यारहवीं शरीफ की नियांज (चढ़ावा) चढ़ाता है तो दूसरा मुहर्रम में अजादारी (सोग) करता है। मगर खैर अब तो हमारा पूरा खानदान ही आधा तीतर आधा बटेर है। और हम सब अजादार हैं कि वंशावली हमारी खो गयी है। और असल नस्ल का अता-पता नष्ट हुआ। खानदानों में यह खानदान कैसे पहचाना जाएगा? अब यह खानदान काहे को है दरख्त से झड़े हुए पत्ते हैं कि हवा में उड़ते फिरते हैं और खाक में रुलते-मिलते हैं।

अंजींज! अब मैं उड़ते पत्तों का सोगवार हूं। उन दिनों को, जब यह खानदान फल और पत्तों से लदा-फंदा दरख्त था, याद करता हूं और आवारा पत्तों को शुमार करता हूं। मैंने मरने वालों के आंकड़े जमा नहीं किये हैं, जिनकी जिन्दों में गिनती है उनको ही शुमार करता हूं। सबके नाम, पते और हालात लिखे हैं। गवेषणा की है कि खानदान के सदस्यों में से कौन किस मुल्क में आवारा है और किस नगर में रह रहा है। यह शिक्षा भरा चिट्ठा मैं तुम्हें भिजवा दूंगा। अपना क्या ऐतबार कि प्रभात काल का दिया हैं। दिया बुझा चाहता है और आंख बन्द हुआ चाहती हैं। तुम इस बदकिस्मत खानदान के नए सुपुत्र हो। अंधेरे में भटकते हुओं को अगर तुम उजाले में लाने की कोशिश करो

तो यह तुम्हारी आज्ञाकारिता होगी। वैसे तो निरीक्षण में यही आया है कि तिनके बिखर गये सो बिखर गये। तितर-बितर खानदान कभी सिमटते नहीं देखे गये मगर कोशिश करना इनसान का फर्ज है। इस दीन-हीन खानदान के संरक्षक बनो। आवारों की खैर-खबर लो। अब तो रास्ते खुलने लगे हैं। इधर का भी एक फेरा लगा जाओ। अपनी सूरत दिखा जाओ, हमारी सूरत देख जाओ। तुम्हारी चची का तगादा है कि दुल्हन को साथ लेकर आओ। हां मियां, अकेले मत चले आना, इस बहाने तुम्हारे बच्चों को भी देख लेंगे कि किसकी क्या शक्ल-सूरत है। कौन गोरा है, कौन काला है। एक बात और पाकिस्तान जाकर इस खानदान में जो वृद्धि हुई है, उसका विवरण मैंने नामों की हद तक लिखा है शक्ल-सूरत का विवरण दर्ज नहीं किया जा सकता।

यह खाना तुम खुद भर लेना। इस ढाई पौने तीन साल के समय में जो खानदान में कमी या वृध्दि हुई उसका दर्ज होना भी जरूरी है। तुम ऐसा करो कि इस मुद्दत में उधर जो गुंजर गये और जो नए पैदा हुए उनका विवरण मालूम करके मुझे लिखो। मैं अलग-अलग कहां खत लिखूं। डाक खुली तो है मगर इतनी महंगी कि अब तुच्छ-सा पोस्ट कार्ड लिखते हुए भी यह लगता है कि तार भेज रहे हैं। यह क्या सुन रहा हूं कि खदीजा की छोटी बेटी ने पति से तलाक ले लिया है? और परिवार नियोजन के दफ्तर में भर्ती हो गयी है। खुद तो काम से गयी दूसरों के पतित्व के वजीफे में खंडत डालती फिरती है। हां मियां वंशावली तो खो गयी अब यह खानदान जो भी करे थोड़ा है। मगर सुनता हूं कि दूसरे खानदान वाले इससे भी बढ़कर कर रहे हैं। कोई बता रहा था कि इब्राहीम ने आटे में चूरी और चरी पीस-पीस कर एक और मिल बना ली है और मियां फैजुद्दीन ने जो यहां फटेहालों फिरते थे काले पैसे से कोठियां खड़ी कर ली हैं। मैं पूछता हूं कि क्या पाकिस्तान में सब ही खानदानों की वंशावलियां खो गयी हैं? हैरत की बात है कि हमने हिन्दुस्तान में शताब्दियां बसर कीं। ऐश का जमाना भी गुजारा, उधार के दिन भी देखे। उसकी शान के कुर्बान, हुकूमतें भी कीं। पराधीन भी रहे मगर वंशावली हर हाल में बड़ी सावधानी से रखी। उधर लोगों ने चौथाई शताब्दी में अपनी वंशावलियां गुम कर दीं। खैर, खुश रहो!

क्या-क्या लिखूं? लिखने को बहुत है। मगर तुम इस लिखे को बहुत जानो। अपनी खैरियत भेजो। आने की सूचना दो। खत खत्म करता हूं कि अब नमांज का वंक्त हो रहा है और उसके बाद मुकद्दमे के कांगंज तर्तीब देने हैं। कल फिर पेशी है। यह चार सौ सत्ताईसवीं पेशी है। इंशाअल्लाह यह भी खुश असलूबी से भुगतायी जाएगी, शायद मैं इन्हीं पेशियों के लिए जिन्दा हूं। वर्ना अब तुम्हारे बूढ़े चच्चा में कुछ बाकी नहीं रह गया है। यहां तक कि जीने की इच्छा भी बाकी नहीं रही। दुनिया में आकर बहुत कुछ देखा। जो न देखना था वह भी देखा। अब तो जल्दी आँख बन्द हो कि वह देखें जो देखने की एक मुद्दत से इच्छा है।

तुम्हारा बहुत दूर का निवासी गुमनाम कुर्बान अली

मोरखा 28 रमज़ान-उल-मुबारक 1394 हिज्री

मुताबिक 15 अक्टूबर 1947 ई.।

(उर्दू से अनुवाद : नन्दकिशोर विक्रम)

■ ■ ■

शीर्ष पर जाएँ